मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण

डॉ. एम. डी. थॉमस

---

1. मानव अधिकार की धारणा के विविध आयाम

1.1. मानव अधिकार का संदर्भ

यह तो बिलकुल ही ज़ाहिर बात है, 'विविधता' सृष्टि की बुनियादी विशेषता है। सृष्टि की यह विविधता ही व्यापक तौर पर मानव अधिकार का संदर्भ भी है। सृष्टि के भिन्न-भिन्न तत्व 'अनेक' होने के साथ-साथ एक-दूसरे से 'गुणात्मक प र्क' लिए हुए हैं। खास तौर पर मनुष्य वी संस्कृति में, व्यक्ति हो या समुदाय, संस्था हो या और कोई इकाई, हर एक की अपनी-अपनी 'अहमियत' है। इन्सान की ज़िन्दगी सुचारू रूप से चले, उसके लिए ज़रूरी है कि व्यक्ति और व्यक्ति तथा समुदाय और समुदाय के बीच 'आपसी तालमेल' रहे। जीवन के विभिन्न पहलुओं में मेल-जोल का 'सन्तुलन' बना रहे, यह जीवन की कामयाबी के लिये अहम है। मनुष्य के अलौकिक जीवन का असली आधार भी बस यही है। जब यह सन्तुलन बिगड़ जाता है, मानव अधिकार अपने आप में एक मुद्दा बन जाता है।

1.2. मानव अधिकार का आधार

मानव अधिकार का आधार असल में 'अनुशासन' है। सामाजिक तालमेल भी अनुशासन के बलबूते ही हासिल होता है। अपने पर 'खुद शासन' करना अनुशासन है। 'भीतरी संयम' अनुशासन की आत्मा है। हर चीज़ की एक कुदरती हद होती है। किसी भी इकाई की धारणा इसी से बनती है। 'अपनी हद' का ध्यान रखना जिंदगी को सुचारू रूप से चलाने के लिये जरूरी होती है। 'अपनी आज़ादी' और 'दूसरे की आज़ादी' के बीच मौज़ूद 'शराप त की रेखा' का लिहाज करते हुए जीना अनुशासन है। अनुशासित शख्स दूसरे का 'अतिक्रमण' कदापि नहीं करता। अनुशासन में ही सामाजिक जीवन का सन्तुलन और तालमेल है। अनुशासन में रहना समाज के हर सदस्य के लिये, देश के हर नागरिक के लिये, अनिवार्य है। व्यक्ति और समुदाय के स्तर पर अनुशासन जीवन की एक सहज प्रक्रिया बनी रहे, इसी में मानव जीवन की सार्थकता है। 'अनुशासन की बुनियाद' पर ही मानव अधिकार की चर्चा प्रासंगिक लगती है।

1.3. मानव अधिकार की अवधारणा

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'अधिकार' मनुष्य के जीवन की 'आधार-शिला' है। यह इन्सान को ज़िन्दगी में अपनी 'संभावनाओं' को विकसित करने के लिए सब कुछ कर सकने में समर्थ बनाता है। अधिकार इन्सान का वह 'स्वामित्व' है, जो उसकी अपनी ज़िन्दगी जीने के लिए ज़रू री तमाम चीज़ों पर होता है, जैसे वस्तु और सम्पत्ति। उपर्युक्त चीज़ों को 'हासिल करने की प्रक्रिया' भी अधिकार के भीतर आती है। किसी विशिष्ट कार्य करने की 'शक्ति या योग्यता' भी अधिकार है। जो धर्म, न्याय, आदि की दृष्टि से उचित या ठीक हो, असल में यही 'हव ' है। इसकी प्राप्ति भी न्याय, प्रथा, आदि के मुताबिक होती है। हर किसी को अपना-'अपना हिस्सा' मिले, यही न्याय है। न्याय में ऐसे आचरण या व्यवहार का इन्तजाम है, जिसमें

'नैतिक दृष्टि' से किसी प्रकार का अनौचित्य, पक्षपात या बेईमानी नहीं है। न्यायपूर्ण व्यवहार में 'समता' का भाव है। संसार के सभी मनुष्यों का 'समान रूप से कल्याण' हो, सब को उन्नत, सन्तुष्ट और सुखी होने की व्यवस्था मिले, यही अधिकार का व्यापक मकसद है। मनुष्य के आदर्शों, स्वाभाविक गुणों, भावनाओं, आदि का प्रतीक है मानवता। 'मानवता की प्रतिष्ठा' का भाव मानव अधिकार की अवधारणा का मर्म है। जब इस पुनीत भाव का भंग होता है तब 'मानव अधिकार की मांग' एक चुनौतीपूर्ण 'प्रतिबद्धता' का रूप ले लेती है। ऐसी प्रतिबद्धता ही एक 'मिशन' के रूप में बुलन्द होती है, जो मंज़िल तक पहुँचने तक अपने सफर में डटकर कायम रहता ह।

1.4. मानव अधिकार के साथ कर्तव्य का समन्वय

मानव अधिकार की धारणा 'कर्तव्य' की चर्चा से बिछुड़कर अधूरी रहती है। कर्तव्य के संदर्भ में ही अधिकार का विचार प्रांसगिक और कारगर है। 'अधिकार और कर्तव्य' 'एक सिक्के के दो पहलू' के समान 'एक दूसरे के पूरक' हैं। ये दो बातें 'गाड़ी के दो पहिये' के समान एक दूसरे के लिये अनिवार्य है। जीवन के 'तराजू' में 'अधिकार और कर्तव्य के पलड़े जब बराबर' रहे, तभी समाज में तालमेल रहेगा। तभी मानव जीवन की परिभाषा पूरी होगी। इसलिये 'भारत के संविधान' में 'मौलिक अधिकारों' के साथ-साथ 'मौलिक कर्तव्यों' की चर्चा हुई है। इन पहलुओं में 'अनुपात' ठीक रखना जीवन की सार्थकता के लिये बेहद ज़रूरी है। कोई अपना 'हक़ हासिल' करने लायक तभी होगा जब उसने अपना 'फ़र्ज निभाया' हो। एक अपने 'कर्तव्य का पालन' करे, तभी दूसरे को अपना 'अधिकार हासिल' होगा। 'अपने ओहदे की आज़ादी' हासिल हो, उसकेलिए अपने हक़ की आज़ादी दूसरे को भी मिले, यह दरकार है। हर कोई 'दूसरे का सम्मान' करे, उसके 'आत्मसम्मान' को ठेस नहीं पहुँचाये और उसके व्यक्तिगत मामलों में 'हस्तक्षेप नहीं' करे, ऐसा व्यवहार मूल कर्तव्य के मुताबिक ज़रूरी है। कोई किसी का 'शोषण नहीं' करे और कोई किसी को 'पीड़ा नहीं पहुँचाये', यह भी कतव्य-पालन के तरीके हैं। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अपने से छोटा नहीं समझ, कोई समुदाय दूसरे समुदाय को 'हीनभावना' से न देखे, कोई व्यक्ति या समुदाय दूसरे पर हमला न करे, ये बातें भी कर्तव्य की माँगें हैं। यदि एक तरप 'जीने का अधिकार' है तो दूसरी तरप 'जिलाने का कर्तव्य' भी है। संविधान का अनुच्छेद 15 के अनुसार, ''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा''। कानून, शासन और प्रशासन की तरप से 'समान व्यवहार' प्राप्त होना हर नागरिक का हव है। सबको सीखने, बढ़ने और सार्थक रूप से जीने के लिए 'समान अवसर' प्राप्त हो, इसके लिए 'आपसी सहयोग' ज़रूरी है। मानव अधिकार और मानव कर्तव्य के सन्तुलित तालमेल की नींव पर ही 'इन्सानियत' की इमारत खड़ी हो सकती है। सद्भाव और सहयोग से परिपूर्ण व्यवहार से 'अधिकार और कर्तव्य के बीच का पुल' बनता है, जिससे होकर इन्सान एक दूसरे की ओर सफर तय करता है।

1.5. मानव अधिकार और धर्म

मानव अधिकार की रक्षा में 'धर्म' की अहम् भूमिका है। 'जुड़ने-जोड़ने' का नाम है धर्म। जुड़ने के लिए, चाहे ईश्वर से हो या इन्सान से, अधिकारों और कर्तव्यों का पक्का इन्तज़ाम चाहिए। सही मायने में 'धारण करना' ही धर्म है। कर्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों को भी धारण किया जाता है। धारण करने का मतलब 'ज़िम्मेदारी लेना' है। धर्म-तंत्र की ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी-अपनी परंपरा में आस्था रखनेवालों को अपने 'कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग' करें। धर्म का प र्ज़ यह सुनिश्चित करना भी है कि अपने समुदाय के लोग दूसरों से अपनी 'अपेक्षाएँ' रखने के साथ-साथ उनके प्रति अपनी 'जिम्मेदारियाँ' भी निभाएँ। गहरे अर्थ में, धर्म 'स्वभाव' और 'अन्त:करण' भी हैं। अपने-अपने व र्तव्य और अधिकार के बीच आपसी तालमेल रखना हर आस्थावान व्यक्ति का स्वभाव और 'अंतरात्मा की आवाज़' बन जाये, यही धर्म का आखिरी लक्ष्य है। 'अधिकार-

चेतना' और 'कर्तव्य-भावना' दोनो 'धर्म-बोध' की बुनियाद में एक संयुक्त इकाई के रूप में मौजूद हैं। असल में धर्म 'मानव अधिकारों की स्वीकृति एवं रक्षा की व्यवस्था' है। 'विविध धर्म-परम्पराओं' से उभरे 'सार्वभौम मूल्यों' के बलबूते इन्सान को अपनी ज़िंदगी में अधिकार और कर्तव्य के समायोजन में सहूलियत मिले, धर्म-परम्पराओं की यही सार्थकता है। विविध धर्म-परंपराओं में मानव अधिकार की अवधारणा की चर्चा इसी विचार से ही तार्किक और प्रासंगिक लगती है।

2. मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण

2.1. 'इन्सान में ईश्वर की सदृश्यता' मानव अधिकार की नींव

ईसाई धर्म में मानव अधिकार की अवधारणा की नींव ज़ाहिर तौर पर बाइबिल में पायी जाती है। बाइबिल में इसकी चर्चा स्वतन्त्र रूप से न होकर समग्र रूप से किया गया है। मानव अधिकार से संबंधित ईसाई दृष्टिकोण की चर्चा इस धारणा से शुरू होती है कि ''ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाया'' (पवित्र बाइबिल, पुराना विधान, उत्पत्ति 1.-26-27 पृ. 5; 5.1, पृ. 9)। इन्सान 'ईश्वर के सदृश' बनाया गया है। 'ईश्वर का स्वभाव उस पर छाया रहता' है। ईश्वर 'इन्सान में वास करता' है। ज़िन्दगी के महासागर में व्यक्ति-रूपी नाव में ईश्वर इन्सान के 'साथ सदा सफ़र करता' है। (वही, नया विधान, मारकुस 4.35, पृ. 61)। बाइबिल की कुछ पुस्तकों के लेखक पौलुस पूछते हैं, ''क्या आप यह नहीं जानते कि 'आप ईश्वर के मन्दिर' हैं और 'ईश्वर की आत्मा आप में निवास करता' हैं'' (वही, 1 कुरिंथी 3.16, पृ. 255; 2 कुरिंथी 6.16, प. 279)? ईश्वर का प्रतिरूप होकर 'इन्सान उस प्रतिष्ठा और गरिमा के लायक' है, जो ईश्वर को प्रतीकात्मक तौर पर दिया जाता है। 'ईश्वर का प्रतिरूप और प्रतिनिधि' होकर हर इन्सान 'इज़्जत और सम्मान का हव दार' है। खुदा को किसी की इबादत की ज़रूरत नहीं है। इन्सान के साथ उसके गरिमा के लायक किये जानेवाले सद्व्यवहार में खुदा की असली इबादत सम्पन्न होती है। इसलिये ईसा कहते हैं कि ''तुम मेरे इन भाइयों या बहनों के लिए, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, जो कुछ करते हो, वह तुम मेरे लिए ही करते हो'' (वही, मत्ती 25.40, पृ. 45-46)। मतलब यह है, 'इन्सान की सेवा' 'ईश्वर की पूजा' के बराबर है। ज़रूरत इस बात की है इन्सान दूसरे इन्सान को 'ईश्वर का प्रतिरूप' माने, उसमें 'ईश्वर की सदृश्यता' देखे, 'ईश्वर की मौजूदगी' का एहसास करे, उसका 'सम्मान' करे और उसकी 'सेवा' करे। ऐसा व्यवहार, एक तरफ़, इन्सान का प ज है और दूसरी तरप, उसका का हव भी है। ऐसी धारणा मानव अधिकार के ईसाई दष्टिकोण की बुनियाद है ।

2.2. 'समभाव' मानव अधिकार की भित्ति

इन्सान-इन्सान में 'समभाव' की भित्ति पर मानव अधिकार की ईसाई धारणा आगे बढ़ती है। समभाव ईसाई जीवन-दृष्टि का केन्द्रीय मूल्य है। ईसा ने ईश्वर को 'पिता' के रूप में महसूस किया और सब मनुष्यों को उस 'पिता की सन्तान' मानी। अपने आध्यात्मिक ज्ञान की कसौटी पर उन्होंने यह घोषित किया कि जैसे किसी भी बाप के लिए अपनी औलाद बराबर महत्व की है, ठीक वैसे ही सभी मनुष्य ईश्वर के सामने 'समान महत्व' के हैं। समभाव वास्तव में 'ईश्वरीय गुण' है। ईसा ने अपने स्वर्गिक पिता के इस गुण को इन शब्दों में चित्रित किया कि ''अपने स्वर्गिक पिता भले और बुरे, दोनों पर अपना सूर्य उगाता तथा धर्मी और अधर्मी, दोनों पर पानी बरसाता है'' (वही, मत्ती 5.45, पृ. 8)। ईसा ने अपने आदर्श पिता की मानसिकता को पूरी तरह से अपनाया और 'पूर्ण समभाव की वकालत' करते हुए अपने शिष्यों से कहा, ''तुम पूर्ण बनो, जैसे तुम्हारा स्वर्गिव पिता पूर्ण है'' (वही, मत्ती 5.48, पृ. 8)। समभावपूर्ण व्यवहार ही 'पूर्णता' की सही परिभाषा है। इसी में 'धर्म और आध्यात्मिकता की चरम सीमा' पायी जाती है। स्पष्ट है, समभाव में कर्तव्य-पालन और अधिकार-प्राप्ति का सुरक्षित इन्तज़ाम है।

2.3. 'प्रेमभाव' मानव अधिकार की आत्मा

'प्रेमभाव' मानव अधिकार की आत्मा है। इसकी शुरूआत सद्भाव से होती है और यह समभाव में समा रहता है। प्रेम ही ज़िन्दगी का मर्म है। यही 'जीवन का मुख्य नियम' भी। यदि इस नियम का पालन सख्ती से होता है, तो ज़िन्दगी में दूसरे नियमों की ज़रूरत नहीं होती। पौलुस इस नियम को ''हृदय पर अंकित नियम'' और ''अन्त:करण का साक्ष्य'' कहते हैं (वही, रोमी 2.15, पृ. 233)। प्रेम का नियम हर इन्सान के दिल के रुझान में पाया जाता है। अंतरात्मा हर पल इस बात का गवाह बनी रहती है। ईसा ने प्रेम की व्याख्या समर्पण के रूप में करते हुए कहा कि ''इस से बड़ा प्रेम किसी का नहीं कि कोई अपने मित्रों के लिए अपने प्राण अर्पित कर दे'' (वही, योहन 15.13, पृ. 172)। ईसाई परंपरा की 'बुनियादी तालीम' के रूप में उन्होंने 'अपनी मिसाल' को ही पेश करते हुए कहा कि ''जिस प्रकार मैंने तुम लोगों को प्यार किया, उसी प्रकार तुम भी एक दूसरे को प्यार करो'' (वही, योहन 13.34, पृ. 169)। 'ईश्वर सब का पिता है' और 'सब मनुष्य अपने भाई और बहन हैं' ऐसा अहसास ही 'ईसाई की आस्था' है, यही उसकी 'पहचान' भी। इस नज़रिये में खून की जगह 'प्यार' इन्सान के 'आपसी रिश्ते और दोस्ती' का निर्णायक बन जाता है। 'अपनेपन और आत्मीयता' के ऐसे माहौल में दूसरे से जुड़ना और उसकेलिये सबकुछ करना आसान ही नहीं, 'स्वाभाविक और सुखद' बन जाता है। प्रेमभाव से प्रेरित होकर कर्तव्य-पालन जब इन्सान का स्वभाव बन जाता है, सब को अपना अधिकार यों ही हासिल हो जाता है। जब कोई 'इन्सानियत' की ऐसी परिष्कृत दशा में पहुँच जाता है, तब मानव अधिकार की चर्चा तक अप्रासंगिक साबित होगी, यह निश्चित है।

2.4. 'आपसी व्यवहार' मानव अधिकार का रूप

समाज की अलग-अलग इकाइयों के 'आपस में जैसा व्यवहार' होता है ठीक वैसा ही रूप है मानव अधिकार का भी। इन्सान इन्सान स, परिवार परिवार से, समुदाय समुदाय से, संस्था संस्था से और कोई एक इकाई अन्य किसी इकाई से कैसा जुड़े और उसके साथ कैसा व्यवहार करे, उसी तर्ज पर मानव अधिकार के मुद्दे के भिन्न-भिन्न पहलू उभरकर सामने आयेंगे। ईसा ने आपसी व्यवहार का एक ऐसा 'स्वर्णिम नियम' पेश किया है, जोकि इन्सानी ज़िंदगी को समग्र रूप से अपने में समेट लेता है। उनका कहना है कि ''दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो, तुम भी उनके प्रति वैसा ही किया करो'' (वही, मत्ती 7.12, पृ. 10)। आपसी लन-देन की यही बुनियादी नीति है। दूसरों के प्रति अपनी 'ज़िम्मदारियाँ निभाने' के बाद ही उनसे 'उम्मीदें रखना' जायज है। ऐसा व्यवहार ही न्याय के मुताबिक है। यही 'नीतिशास्त्र' की सार्वभौम आधार भी है। इस स्वर्णिम नियम में 'हव और प ज के दरमियान तालमेल और सन्तुलन' भरपूर कायम है। साथ ही, प ज को निभाने की प्राथमिकता पर ज़ोर लगने से हक को हासिल करने की प्रक्रिया में सहज ही निश्चितता आती है। 'कर्तव्य का मूल्य' चुकाने पर ही 'अधिकार पर दावा' किया जा सकता है। व्यक्तियों और समुदायों की सम्मिलित जीवन की सफलता के लिए यह नियम बाकायदा स्वर्णिम है।

2.5. 'एक शरीर, अनेक अंग' मानव अधिकार की मिसाल

पौलुस ज़िंदगी की बुनियाद को टटोलने के बाद उसके तह से एक ऐसा तर्क पेश करते हैं जोकि व्यावहारिक और लाजवाब ही नहीं, 'अधिकार और कर्तव्य के तालमेल के लिये सर्वोत्तम मिसाल' भी है। उनका कहना है कि हम ''एक शरीर, अनेक अंग'' के समान ह (1 कुरिंथी पत्र 12.12-13, पृ. 265-6)। इस बात की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि शरीर के बहुत-से अंग होते हैं, लकिन शरीर एक है। अंग शरीर नहीं है, बल्कि सिर्फ अंग है। अनेक अंग एक ही अंग की बहुतायत नहीं है, वरन् अलग-अलग हैं। अंगों के भिन्न-भिन्न रूप हैं, आकार हैं, स्वभाव हैं, जगह हैं और भूमिकाएँ हैं। उनमें मौजूद प र्क ही उसकी अपनी-अपनी 'खासियत' है। सभी अंग मिलकर शरीर बनते हैं। शरीर का कोई एक अंग दूसरे से कह नहीं सकता कि मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं। शरीर के किसी एक अंग की जीत या खुशी 'सभी अंगों की जीत या खुशी' है। ठीक उसी प्रकार, शरीर के

किसी एक अंग में होनेवाला दर्द सभो अंगों में महसूस होता है। शरीर का कोई भी अंग बड़ा या छोटा नहीं है। सभी अंग 'बराबर आदर के पात्र' हैं। शरीर का कोई भी अंग कमज़ोर नहीं है। यदि कोई अंग अपने आपको दूसरे से ज़्यादा ताकतवर समझता है, तो उसका फज है, जो कमज़ोर समझा जाता है उसके लिए सहारा बनना। अंगों को 'एक दूसरे की सेवा' करनी चाहिए। अंगों की 'विविधता और आपसी सहयोग' से ही शरीर की गतिविधियाँ सुचारू रूप से चल सकती है। 'शरीर की एकता में अंगों की प्रासंगिकता' निहित हैं। सबका अपना-अपना कर्तव्य और अपना-अपना अधिकार है। जैसे शरीर के विविध अंग आपस में पूरक हैं, ठीक वैसे ही अधिकार और कर्तव्य भी एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। किसी एक व्यक्ति की 'अधिकार-प्राप्ति' दूसरे के 'कर्तव्य-पालन' पर निर्भर है। इस संदर्भ में 'शरीर' की संरचना और गतिशीलता मानव अधिकार की रक्षा के लिये बेहद प्रेरणादायक है।

2.6. 'दूसरे की ज़िम्मेदारी लेना' मानव अधिकार की व्यवस्था

अपने आपको 'दूसरे के लिये ज़िम्मेदार' महसूस करना मानवीय संवेदना और रिश्ते का पुख्ता सबूत है, जिसमं जीवन की 'सामाजिकता' की पहचान छिपी हुई है। दूसरे के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए यह पुनीत भाव एक बहुत ही कारगर उपाय है। इस सिलसिले में बाइबिल के पुराने विधान का एक किस्सा बेहद प्रासंगिक प्रतीत होता है। आदम और सारा व दो पुत्र थे, 'काईन और हाबिल'। काईन खेती करता था और हाबिल भेड़-बकरियों को चराता था। खुदा हाबिल से ज़्यादा प्रसन्न थे। इस पर काईन नाराज़ थे। जलन के मारे एक दिन काईन ने हाबिल पर वार किया और उसे मार डाला। खुदा ने काईन से पूछा, ''तुम्हारा भाई हाबिल कहाँ है''? काईन ने खुदा के सवाल का जवाब नहीं दिया, बल्कि उल्टा सवाल किया, ''क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ'' (वही, पुराना विधान, उत्पत्ति 4.1-10, पृ. 7-8)? यह सवाल मानवीय ज़िन्दगी में बुनियादी तौर पर महत्व रखता है। बाइबिल के नये विधान में एक दूसरा किस्सा इस सवाल का जवाब पेश करता है। ईसा अपने शिष्य और माता मरियम के साथ 'काना नगर के एक विवाह-समारोह' में शरीक हुए। समारोह में अंगूरी परोसने की प्रथा थी। यकायक अंगूरी खत्म हो गयी और मेजबान परेशान हो गये। माता मरियम को इस बात का पता चला। उन्होंने मेजबान से चर्चा किए बगैर ही अपना बेटा ईसा से कुछ करने का आग्रह किया। ईसा ने अपनी अलौकिक ताकत से पानी को अंगूरी में बदल दिया। माता मरियम ने इस प्रकार उस मेजबान की लाज रखी। 'बगैर पूछे ही', सोच-समझकर और दूसरे को 'अपना भाई मानकर' उसकी 'ज़रूरत की पूर्ति' करते हुए माता मरियम ने यह साबित किया कि 'वह अपने भाई की रखवाली है' (वही, योहन, 2.1-11, पृ. 146)। ये दोनों किस्से प्रतीक के तौर पर 'सवाल और जवाब' के रूप में आपस में मुखातिब हैं। पुराने विधान के सवाल का जवाब नये विधान ने शब्दों में नहीं बल्कि व्यवहार में दिया। दूसर की ज़िम्मेदारी लेना और मौका आने पर उसकी मदद करना अपना कुदरती फ़र्ज है। ऐसी 'ज़िम्मेदारी की भावना' में 'दूसरे के अधिकारों की रक्षा' करने की असीम ताकत छिपी हुई है। अपने कर्तव्यों का पालन करने का सबसे कारगर तरीका यही है। असल में इन्सानियत और धर्मपरायणता की सम्मिलित पहचान जीवन की इस मान्यता में मौजूद है।

2.7. 'असंतुलित सामाजिक हालत' में मानव अधिकार की चेतना

ईसा के समय पर यहूदी समाज ऐसे 'उथल-पुथल' से भरा हुआ था कि साधारण लोगों केलिये जीना ही दूभर हो गया था। समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के बीच 'अधिकार और अधिकार का अनुपात पूरी तरह से बिगड़' गया था। धर्म के क्षेत्र में 'अधिकारों का उल्लंघन' सबसे अधिक था। यहूदी समाज के धर्म-नेता अपने आपको पुण्यात्मा और भला समझते थे और दूसरों को पापी और बुरा। 'धर्म के पाखंडी धुरंधरों' ने खुदा के नाम पर बेवजह ही कर्मकाण्डी बोझ उठाकर आम लोगों के कंधे पर रखा करते थे। 'खुदपरस्ती और ऊँच-नीच' के भाव से ग्रस्त उनके कलंकित मन में खुदा के लिये कोई जगह नहीं थी।

'भेदभावपूर्ण व्यवहार' के कारण ताकतहीनों के अधिकारों का हनन होता था। इन्सान-इन्सान के बीच फ़र्क करके अपने आपको ज़्यादा महत्वपूर्ण साबित करने की यह हौड़ असल में खुदा के अलौकिक स्वभाव के साथ गुस्ताखी नहीं तो क्या थी! 'दूसरों के जायज हिस्से का एसे खुल्लम-खुल्ला अतिक्रमण' देखकर ईसा ने उन पाखण्डियों की पोल खोली और उन पर जमकर बरसे। और तो और, उन्होंने बुनियादी मानव अधिकारों से वंचित उन तथाकथित पापियों को हकीकत में 'दिल का साफ' होने और 'खुदा के नज़दीक' होने का करार दिया। नाकेदार-जैसे समाज के निम्न वर्ग के लोगों तथा पापियों के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना और दोस्ती करना जैसे 'ईश्वर-तुल्य व्यवहार' से ईसा ने 'कमज़ोरों के अधिकारों की रक्षा' की (वही, लूकस 19.1-10, पृ. 129)। सौ भेड़ों में से निन्यान्बे को छोड़कर एक 'खोये हुए की तलाश' में निकलने वाले 'भले गड़रिये' का जीवन्त रूप बनकर ईसा ने 'जीने के हव से वंचित लोगों की तरफ़ खड़े' हुए (वही, लूकस 15.1-7, पृ. 121-22)। साथ ही, ईसा ने 'गरीब, दीन-हीन, नम्र, दुखी, गुनहगार' आदि के 'अलौकिक बड़पन' को उजागर करके उन्हें 'ईश्वर-सदृश इज्ज़त' दिलायी (वही, मश्री 5.1-10, पृ. 5-6)। उन्होंने 'कमज़ोरों, ताकतहीनों, आवाज़हीनों और हाशिये पर सरकाये हुओं' को मजबूत करने और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने की अनूठी बीड़ा उठायी। ज़ाहिर है, वर्तमान भारतीय समाज में, जहाँ अनगिनत तरीकों से 'मानव अधिकारों की निर्मम हत्या' चल रही है, यह कहना बिलकुल समीचीन लगता है कि मानव अधिकारों की रक्षा के लिये ईसा की बुलंद चेतना बहुत ही प्रेरणादायव है।

2.8. 'वंचित वर्ग के साथ होना' मानव अधिकार की रक्षा की दिशा

ईसा की मानव अधिकार चेतना वंचित और शोषित वर्ग के साथ, खास तौर पर 'महिला, बच्चे और नगण्य' लोगों पर, होनेवाले पक्षपातपूर्ण व्यवहार के खिलाफ डटकर खड़े होने में अभिव्यक्त हुई। 'महिलाओं' को न्याय दिलाने की दिशा में ईसा ने 'व्यभिचार में पकड़ी गयी स्त्री' को पत्थर से मार डालने जा रहे ढ़ोंगी पुरुषों की व्यभिचार के साथी होने की असलियत को उजाले में लाकर पुरुषों के अन्यायपूर्ण हरकतों से उन्हें निजात दिलायी (वही, योहन 8.1-11, पृ. 157-58)। पश्चाताप करनेवाली 'पापिनी स्त्री' को खुदा की माफ़ी और स्वीकृति के योग्य बताकर ईसा ने पुरुषों की हुकूमत की मज़बूरी भोग रही स्त्रियों को पुरुषों के बारबर का दर्जा दिलाया (वही, लूकस 7.36-50, पृ. 103)। 'बच्चों' को छोटा समझकर अपने आपको बड़ा माननेवाले वयस्कों को 'बच्चों में असली बड़प्पन' का अहसास करा कर ईसा ने बच्चों को अपने अधिकार से युक्त किया (वही, मत्ती 18.1-17, पृ. 30)। दुनिया की दृष्टि में 'मूर्ख, दुर्बल, तुच्छ और नगण्य' लोगों को 'खुदा के विशेष प्यारे' घोषित कर ज्ञानी, शक्तिशालो, कुलीन और गणमान्य लोगों की अपने घमण्ड और विशिष्ट अधिकार-भावना के लिये चुनौती देते हुए पौलुस ने अधिकारों में सन्तुलन स्थापित करने की ईसा की पहल को फैलाव भी दिया (वही, 1 कुरिंथी, 1.26-31, पृ. 253)। इस प्रकार के अनगिनत घटनाओं द्वारा ईसा नेवंचितों और शोषितों पर बीत रहे 'अन्याय के दर्द को महसूस' किया और उनके मानव अधिकार की रक्षा की दिशा मे एक नयी परंपरा ही चलायी।

2.8. 'कमज़ोरों की तरजीही सेवा' मानव अधिकार का कारगर कदम

समाज के 'निचले या कमज़ोर तबके के लोगों की तरजीही सेवा' ही उन्हें अधिकारयुक्त करने का सबसे कारगर कदम है। ईसा ने मानव अधिकारों की रक्षा की अपनी मुहीम में 'गरीब, गुनहगार, विकलांग, रोगी, सेवा करने वाले', आदि के अधिकारों को भी बुलन्द किया। 'लाज़रज़' नामक गरीब के बुनियादी हव की ओर बेरहम रहे 'अमीर को दण्ड के लायक' बतलाकर ईसा 'धन-सम्पत्ति की असन्तुलित व्यवस्था में मौजूद हव तलपी' की निन्दा की (वही, लूकस 16.19-31, पृ.124)। मन्दिर के खज़ाने में बहुत अधिक सिक्के डालने वाले अमीरों की तुलना में महज एक पैसा डालने वाली बहुत ही 'गरीब विधवा को सबसे अधिक डालने वाली' बताकर ईसा ने 'खुदा के सामने बड़प्पन की असली कसौटी' को उजागर किया ही नहीं, बड़े-छोटे

की गलतफहमी पर जमकर तमाचा भी मारा (वही, मारकुस 12.41-44, पृ. 77)। 'गुनहगार भी क्षमा के अधिकारी है' इस बात को साबित करने के लिए ईसा ने अपने शिष्यों को ''सत्तर गुना सात बार माफ करने'' की नसीहत दी (वही, मत्ती 18.22, पृ. 31)। साथ ही, सलीब पर चढ़ाकर अपने साथ बेरहमी और हीनतम व्यवहार करने वालों के लिए ''पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं'', ऐसी प्रार्थना कर ईसा 'क्षमा की सबसे अनोखी मिसाल' खुद बनकर दिखाये। इस प्रकार, उन्होंने 'गुनहगारों को पश्चात्ताप करके और मन-परिवर्तन कर एक नयी ज़िन्दगी जीने के अधिकार' से युक्त किया (वही, लूकस 23.34, पृ. 139)। भोज देते समय अपने मित्रों, कुटुम्बियों और अन्य धनी पड़ोसियों की जगह 'कंगालों, लूलों, लंगड़ों और अंधों को बुलाने' की तालीम देकर ईसा ने 'समाज के आधे-अधूरों को भी इज्ज़त के लायक' घोषित किया (वही, लूकस 14.12-14 पृ. 120)। विभिन्न कारणों स 'बीमार हुए लोगों को चंगा' कर और उन्हें 'नया जीवन प्रदान' कर ईसा ने उनके भी 'जीने के अधिकार' पर रोशनी फेरी (वही, मारकुस 5.1-43, पृ. 61-63)। 'पेशे से या स्वेच्छा से दूसरों की सेवा करनेवालों को' निचले स्तर के समझने की गलतफहमी को दूर करने के लिए ईसा ने कहा, ''जो तुम में बड़ा है वह सबसे छोटा-जैसा बने और जो अधिकारी है, वह सेवक-जैसा बने। ... मैं तुम लोगों में सेवक-जैसा हूँ'' (वही, लूकस 22.24-27, पृ. 135)। इस प्रकार, किसी-न-किसी प्रकार से 'शोषण के शिकार' हुए और अपने 'अधिकारों से वंचित' हुए लोगों के प्रति 'तरजीही प्यार' दिखाया। इतना ही नहीं, उन्हें दूसरों से भी महत्वपूर्ण सिद्ध करते हुए ईसा ने निचौड़ के रूप में कहा, ''कारीगरों ने जिस पत्थर को बेकार समझकर निकाल दिया था, वही कोन का पत्थर बन गया है'' (वही मारकुस 12.10, पृ. 76)। मानवमात्र के अधिकार की पुनर्स्थापना के लिए कमज़ोरों की तरफ़ ईसा द्वारा की गयी 'तरजीही प्यार-भरी सेवा' 'मानव अधिकार का एक बहुआयामी और समग्र अभियान' ही था।

2.9. 'सामाजिक तालमेल' मानव अधिकार की मंजिल

मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण 'ईसा की जीवन-दृष्टि, जीवन-शैली और शिक्षा' का निचौड़ ही है। ईसा के 'जीवन-मिशन' का केंद्र 'सामाजिक तालमेल स्थापित करना' ही था। इन्सान ईश्वर का सदृश बना हुआ है। ईश्वर उसमें वास करता है। इसलिए हर इन्सान प्रतिष्ठा और सम्मान के लायक है। हर इन्सान अपने अन्त:करण, विचार, अभिव्यक्ति और आचरण के स्तर पर आज़ाद है। 'जीने-बढ़ने का अधिकार' हर इन्सान के हिस्से में है। सार्वभौम नीतिशास्त्र के साथ-साथ भारतीय संविधान के मुताबिक भी, इन्सान के बुनियादी अधिकार का हनन हरगिज न्याय-संगत नहीं है। लेकिन, जन्म, वंश, भाषा, शिक्षा, पेशा, धर्म, वर्ग, विचारधारा, रीति-रिवाज़, संस्कृति, देश, आदि के आधार पर इन्सान दूसरे इन्सान से श्रेष्ठ होने का ढ़ोंग रचता है और दूसरे को हीन सम्झने की भूल करता है। ईसा अपने समाज की कुरीतियों पर जमकर प्रहार किया। बात-बात पर 'विशिष्ट अधिकार का दावा' करनवाले तथाकथित ताकतवरों, अमीरों, समझदारों और बड़ों को किनारे की ओर धकेल दिया और 'समाज के हाशिये पर जीने को मज़बूर' तथाकथित, 'छोटों, बेवकूपों और कमज़ोरों को मुख्यधारा में होने का अधिकार' दिया। गरीब, गुनहागार, बच्चे, महिलाएँ, विकलांग, बीमार, सेवक और अन्य अभागों को भी खुदा की सन्तान के रूप में हकदार घोषित किया। 'हर इन्सान को इन्सानियत के लायक इज्ज़त दिलाना' मानव अधिकार की विश्वव्यापी मुहीम है। भारत में यह मुहीम कारगर हो उस केलिये ज़रूरत इस बात की है कि 'कोई किसी का शोषण नहीं करे' और 'कोई किसी के अधिकार का अतिक्रमण नहीं करे'। हर कोई 'प्रेम-भाव से दूसरे को अपना भाई या बहन और दोस्त या साथी-मुसापिर समझ कर उसकी सेवा करे'। भारत का हर नागरिक 'जीओ और जीने दो' से भी आगे बढ़कर ''जीने की मदद करो'' के विशिष्ट भाव से प्रेरित होकर समाज के ''कमज़ोरों और आवाज़हीनों की तरजीही तौर पर वकालत'' करता रहे। समूची धर्म-परम्पराओं में दीक्षित और आस्था रखनेवालों के लोग आपस में मैत्री-भाव से प्रेरित होकर एकजुट हो, मानव अधिकार का मार्ग प्रसस्त करने का संकल्प करें और उसके प्रति प्रतिबद्ध हो जायें, यही वक्त की जरूरत और तकाज़ा हैं। मानव समाज, खास तौर पर भारतीय

समाज, 'वसुधैवकुटुम्बकम्' के भाव से भरकर 'ज़्यादा जीनेलायक' बन जाये और 'इन्सानियत की गरिमा में अलौकिक निखार' लाये, यही मेरी मंगलकामनाएँ हैं, प्रयास भी।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS